# प्रथम अध्याय

# भारतीय ग्राम जीवन की स्थिति

# प्रथम अध्याय

## भारतीय ग्राम जीवन की स्थिति

1) ग्राम की परिभाषा ।

2) ग्राम की विशेषता ।

3) ग्राम जीवन की समस्याएँ।

4) भारतीय संस्कृति – ग्राम संस्कृती।

5) स्वातंत्र्योत्तर ग्राम जीवन।

निष्कर्ष

<u>ग्राम की परिभाषा</u> :-

भारत देश भौगोलिक, प्राकृतिक विविधता से बना हुआ है। कहीं ऊँचे पहाड़ है तो कहीं घाटियाँ है। एक ओर सागर है तो दूसरी ओर रेगिस्तान, एक ओर मरूभूमि है तो दूसरी ओर हरियाला, एक तरह नगर है तो दूसरी ओर गांव, छोटी-छोटी बस्तियाँ है। यह भूमि सुजलाम सुफलाम भी है। विविधता में एकता के दर्शन यहीं होते हैं। गाँव, नगर, महानगर से बना भारत देश अपनी प्राचीन धरोहर की रक्षा भी करता है। साहित्य में इसका प्रतिबिंब दिखाई देता है। "ग्राम" - भारत की बुनियादी व्यवस्था है। यह देश नगरों का नहीं बल्कि ग्राम (गाँव) बस्ती का रहा है। म.गाँधीजी ने कहा था 'गाँवों का विकास ही देश का विकास है।' 'देहात की ओर चलो' उनका नारा इसका ही परिणाम है। राजनीति, समाजनीति, धर्मव्यवस्था का परिचायक "ग्राम" ही है। हिन्दी के साहित्यकारों ने अपनी-अपनी कृतियों में ग्रामजीवन का सही यथार्थ-चित्रण किया है।

भाषाशास्त्रीयों, काव्यसमीक्षकों, समाजशास्त्रीयों ने अपने-अपने दृष्टि से ग्राम की व्याख्या करने का प्रयास किया हैं। ग्राम किसे कहा जाए? यह प्रश्न विवादास्पद होकर भी चिंतनीय है। इसप्रकार आज तक कई विद्वानों ने अपने विचार रखे है। सामान्यतः बस्ती, छोटे गाँव को ग्राम कहते है। छोटे से भूभाग में संगठित होकर लोग रहते हैं ऐसे भूभाग को "ग्राम" कहते है।

(1) संस्कृत के आचार्य पाणिनी ग्राम का अर्थ 'आमंत्रण' बताते हैं।'[1]

(2) "हिन्दी शब्दसागर" में ग्राम का अर्थ "छोटी बस्ती" लिखा गया है।[2]

(3) "आदर्श मराठी शब्दकोश" में भी "ग्राम" का अर्थ बस्ती की जगह किया है।[3]

(4) अंग्रेजी भाषा के आधार पर "ग्राम" संबंधी अनुमान लगाया है कि "ग्राम" वह भूमि, खंड हुआ था, जहाँ छोटे-छोटे घर बसे हो। आधुनिक युग में हिन्दी भाषा में ग्राम का जो रूप प्रचलित है, वह अंग्रेजी "विलेज" के अनुरूप है।[4]

<u>निष्कर्ष</u> :-

"गाँव" के बारे में उपर्युक्त मतों पर विचार करते हुए ऐसा लगता है कि छोटी बस्ती

यां छोटे-छोटे समूह को "ग्राम" कहा जाता है। खेती करनेवालों की बस्ती ग्राम है। "ग्राम" की परिभाषा में आजतक कोई खास तौर पर परिवर्तन नहीं हुआ हैं। सभी परिभाषाएँ अपने-अपने दायरे में सही लगती है। ग्राम की संकल्पना सिर्फ बस्ती, समूह, दल इतना ही नहीं बल्कि उसमें निवास करने वालों के मन में जो एकता का भाव रहता है वह भी महत्वपूर्ण है। इसलिए हम कह सकते हैं कि ग्राम वह जिसमें किसान, खेतिहार भोले-भाले लोग अपनत्व की भाव से जीवन जीते ऐसा मुझे लगता है।

2) ग्राम की विशेषताएँ :-

ग्राम की परिभाषा पर विचार करते हुए ग्राम का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। भारत देश देहातों का देश है। खेती उनका आधार है। वही जीविका चलाने का महत्वपूर्ण साधन भी है। भारत देश को "कृषिप्रधान राष्ट्र" कहा गया है। यह नामाभिधान "ग्राम" से जुडा है। भारत में प्राचीन काल में खेती की जाती है। खेती पर ही देश की अर्थव्यवस्था और लोगों का जीवन निर्भर है। खेती करनेवालो लोग देहातों में रहते हैं। देहातों में रहनेवाले ग्रामीण लोगों का जीवन नागरी जीवन से अलग होता है। उनकी रहन-सहना खान-पान, बोली-भाषा, तीज-त्यौहार, समारोह, रूढि-प्रथा, परंपरा, अज्ञान, अंधविश्वास, आपसी मतभेद, द्वेष भावना, विचार और वहाँ रहनेवाले जमींदार, सेठ-साहूकार, पूँजिपति का व्यवहार आदि का परिचय ग्रामीण परिवेश से होता है। भौगोलिक, प्राकृतिक, भौतिक विविधता से जुड़ा ग्राम अपनी अलग पहचान रखता है। ग्राम की कई विशेषताएँ, प्रवृत्तियाँ अपने आप में महत्वपूर्ण है तथा ग्राम संकल्पना के समर्थक भी है। ग्राम, बस्ती में रहनेवाले हर एक दल, समूह जाति की अपनी प्रथा-परंपरा, मान्यता रहती है। उसी का वे निर्वाह या पालन करते है। सामान्यतः निम्नलिखित ग्राम की विशेषताएँ लगती है –

(1) लोकरीतियाँ ।

(2) रूढ़ियाँ ।

(3) कानून ।

क) प्रथागत कानून।

ख) पारित कानून।

(4) परिवार व्यवस्था ।

(5) 'खेती' यही प्रमुख व्यवसाय।

(6) जातिप्रथा।

(7) प्रादेशिक अलगाव ।

(8) स्वयंपूर्णता ।

(9) नारी की स्थिति ।

इन विशेषताओं से अलग 'ग्राम' की कल्पना नहीं की जा सकती। इन सभी विशेषताओं से परिपूर्ण 'ग्राम' होता है। इनकी अवहेलना का अर्थ गाँव की अवहेलना लिया जाता है। इन रीतियों का पालन मानव कर्तव्य–भावना से प्रेरित होकर करता है।

3) <u>ग्राम – जीवन की समस्यायें</u> :–

समाज जीवन के विकास के फलस्वरूप समस्याओं का निर्माण होता है। जब विकास की धारा प्रवाहित होती है, तब उसमें रूकावट के रूप में कई शक्तियाँ कार्यरत बनती है, जो समस्या का रूप लेती है। मानवी जीवन भी इसके लिए अपवाद नहीं रहता। समस्यायें मानवी विकास में बाधा बनकर आती है। प्राचीन काल से आज तक ग्रामजीवन में विभिन्न समस्यों रही है।

1) <u>अज्ञान</u> :–

भारतीय ग्राम जीवन में अज्ञान अधिक है। इसीकारण लोग अनेक अत्याचारों के शिकार होते हैं। शिक्षा का अभाव तथा अज्ञान ही अत्याचारों का मूल कारण है। हिन्दु धर्म

के अनुसार चार्तुवर्ण में केवल ब्राह्मणको शिक्षा का अधिकार था। क्षत्रिय को तीर, तलवार चलाना आदि की शिक्षा आती थी तो वैश्य में लोग व्यवसाय के अनुसार पढना सिखते थे। लेकिन शुद्र जातियों के लिए पढ़ना मना था। नारी को भी शिक्षा व्यवस्था से दूर रखा गया था। इसीकारण शिक्षा ब्राह्मण लोग लेते थे तथा संस्कृत का पाठ पढ़ना आदि कई कर्म वे करते थे। सारा समाज अज्ञान के अंधकार में भटकने लगा। रूढ़ि–परंपरा अंधविश्वास आदि का बोलबाला बढ़ गया। ग्रामीण लोग भूत–प्रेत, चुडैल को मानने लगे। जमींदार, महाजन लोगों ने इनके अज्ञान का पूरा फायदा उठाकर उनकी सारी जमीन हड़पने लगे। परिणामतः किसानों को अपनी जमीन खोनी पड़ी। किसान मजदूर बने, मजदूर गुलाम रहे। शोषण के दमन चक्र में ग्रामवासी पिसते गये। उनका रखवाला कोई नहीं रहा। यहाँ स्पष्ट इसका कारण अज्ञान है। अज्ञान के बारे में महात्मा फुले का कथन सहीं है वे कहते है –

"विद्येविना मती गेली । मती विना नीति गेली।।
नीतीविना गती गेली। गतीविना वित्त गेले।।
वित्तविना शुद्र खचले। इतके अनर्थ एका अविद्येने केले।।[5]

शिक्षा, मुक्त तथा अनिवार्य शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा का प्रचार और प्रसार हो रहा है जिससे अज्ञान का अंधकार नष्ट हो रहा है।

2) अंधविश्वास :–

भारतीय जनता का यह विश्वास है कि प्रतयेक सुख दु:ख का निर्माता ही ईश्वर होता है, मगर विज्ञान इसे "अंधविश्वास" कहता है। "अंधविश्वासों का उद्‌गम मानव मन का एक अभिधान है इसका कारण है कि आदिमानवीय विकास स्थिति में अंधविश्वास एक ऐसी दशा की ओर संकेत करते है, जब मानव नामधारी प्राणी की मानसिक शक्ति, प्रवृत्ति तथा विश्व के प्रति एक जिज्ञासा, कौतुहल तथा भय की मिली जुली मनोवृत्ति का परिचय देती है।"[6] तथा डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव के शब्दों में "गाँव का अर्थ है विश्वास ओर शताब्दियों का वह विश्वास अंधकारविष्ट रहा अत: अंधविश्वास होकर उनके साथ अनिवार्य अंग के रूप में जूड़ गया है।"[7]

ग्रामीण जनता अज्ञानी, धार्मिक और भोली-भाली होने के कारण समाजमान्य परंपरागत नीति का धार्मिक मान्यताओं का सांस्कृतिक परंपराओं का रक्षण करती आ रही है। परिणामस्वरूप अंधविश्वासों का निर्माण हुआ। अंधविश्वासों का पालन लोग जी-जान से करते आये हैं। बिल्ली का रास्ते में आना, दीप का बुझना, छिंक का आना, किसी वस्तु का गिरना, बलि चढ़ाना मनौतियाँ माँगना, शकुन-अपशकुन, पाप पुण्य, मंत्र-तंत्र आदि अंधविश्वास दिखाई देते है। ग्रामीण समाज अंधविश्वास पर बल देता था। इसीकारण सती प्रथा बाल-विवाह, अनमेल विवाह जैसी प्रथाएँ बढने लगी। नारी का शोषण होने लगा। धर्म-धर्मसंस्था का आधार लेकर धर्मांध व्यक्ति अंधश्रध्दा का प्रचार-प्रसार करने लगे। धर्मसंस्था का रूप स्पष्ट करते हुए सौ. शरयू अनंतराम लिखती है – "मानव जीवन और जगत में होनेवाली घटनाओं का संबंध कल्पना की मदद से अति-लौकिक, अति नैसर्गिक शक्ति के साथ जोड़कर इनके प्रति विश्वास श्रध्दा की भावना रखता है। पूजा-पाठ, यज्ञादि का जाल बना देता है – उसे धर्मसंस्था मना है।"[8] यही अंधविश्वास है। बीमारी को हटाने के लिए अच्छी फसल की पैदास के लिए, बरसात के लिए, मनोकामनापूर्ति के लिए, संकट मुक्ति पाने के लिए, देवी-देवता की आराधाना करना आदि कई अंधविश्वास ग्रामीण समाज में दिख रहे थे। अज्ञान, विज्ञान का अभाव, भय की भावना, हानि की शंका, धर्म का कुप्रभाव, धर्म का विकृत रूप आदि कई कारणों से अंधश्रध्दा का प्रभाव ग्रामीण जीवन पर रहा है।

उपन्यासों मे रांगेय-राघव का 'कब तक पुकारूँ' (1956) में मृत्यु के बाद मृतक का पिशाच्च बनना, संतान प्राप्ति के लिए सात शनिचर करना, बीमारी हटाने के लिए तावीज बाँधना, झाड़-फूँक का प्रयोग करना, सापद्वारा गुप्त धन की रक्षा होना आदि अंधविश्वास के ही उदाहरण है।

3) <u>अर्थाभाव</u> :-

औद्योगिकरण का अभाव, बेकारी, तकनीकी का अभाव, अज्ञान अर्थाभाव के कारण ग्रामीण समाज दरिद्रता की खाई में गिरता ही रहा। अज्ञान, दूरदृष्टी का अभाव,

अंधश्रध्दा, हीन संस्कार, अनिष्ट प्रथा के कारण ग्रामीण जीवन में अर्थाभाव की समस्या बनी है। महाजन, साहुकार, जमींदार, अर्थाभाव के कारण उनका शोषण करते है। काफी सूद लेकर रूपये देतें, खेती, मकान, गहने सभी गिरवी रख लेले निलाम भी करते। अंत में ग्रामवासी सूद की किश्त अदा करके दम तोड़ देता है। विवाह, तीज–त्यौहार, धार्मिक समारोह में अनावश्यक धन खर्च करके झूठी प्रतिष्ठा के लिए ग्रामवासी अपना जीवन खो बैठते है। अर्थाभाव के कारण नई–नई समस्याएँ बढ़ रही हैं। इसीकारण आज सरकार ने कम ब्याज में कर्ज देने की योजना बनाई है, जिसके कारण ग्रामवासी अब चैन की सांस ले रहे है।

अर्थाभाव के कारण अवैध धंधे करना, ड़ाका ड़ालना, चोरी करना, भीख माँगता आदि कर्म किय जा रहे है। पैदावार अच्छी हो, बेरोजगारों को काम मिले, फसल को अच्छा दाम मिले, कर्ज सुविधा हो तो अर्थाभाव की समस्या हल हो सकती है।

4) शोषण समस्या :–

भारतीय ग्रामीण समाज में जाति–व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है। जातीय व्यवस्था के कारण समाज में एकता खंडित हो रही है। सामाजिक भेदाभेद के कारण शोषण समस्या को प्रश्रय मिला। ऊँच–नीच भेदाभेद के कारण समाज का ऊपर का तबका नीचले सामाजिक तबके का शोषण करता रहा। "भारतीय समाज में वर्ण, व्यवस्था ने शक्ति और धन के आधार पर सवर्णो को इज्जत, सम्मान, प्रतिष्ठा के अधिकारी बनाया है। ग्रामों में तो दलित युवतियाँ उनके पंज्जे में फँसकर उनके विलास की सामग्री बनती है।"[9] जातीय व्यवस्था और वर्णव्यवस्था के कारण दलितों का शोषण आज तक हो रहा है। ग्रामीण जन भीं इसके लिए अपवाद नहीं है। अज्ञानी, अंधश्रध्द, अविकसित ग्रामीण जन, जमींदार, महाजन, साहुकार, ठाकुर पुलिस, पुरोहित आदि द्वारा उनका निरंतर शोषण होता रहा है। जिसपर विस्तार के साथ देखा जा सकता है –

I) जमींदारों द्वारा शोषण :-

भारतीय समाजव्यवस्था में जमींदारों का स्थान बड़ा होना था। स्वतंत्रता से पहले ग्रामीण जन साधारण सामन्तवादी शोषण के चंगुस से मुक्ति के लिए तड़पता था।" आर्थिक शोषण के संदर्भ में जमींदार एक मिथ और प्रतीक बन गये थे। अतः उनका उन्मूलन होने पर आर्थिक दृष्टि से मुक्ति की सामुहीक सुखानुभूति की लहर सामान्य जन मानस में दौड़ पड़ी थी।"[10] यहाँ स्पष्ट है जमींदारी उन्मूलन से ही सामान्य जन-जीवन सुखी बनेगा। यही जमींदार सामाजिक, आर्थिक शोषण, दमन और अन्याय के प्रतीक बने हुए थे। सामंती वर्गपर प्रहार करते हुए रवींद्रनाथ कहते है – "सामन्ती जीवन की बाह्य चमक-दमक के अंतराल में कितना अनाचार और बर्बरता परिव्याप्त है ओर धर्म-कर्म, सदाचार और नैतिकता आज केलव असहायों को भुलावे में डालने के साधन हैं। ध्वसोन्मुखी सामंत वर्ग के लिए इन सामाजिक तत्वों का कोई मूल्य नहीं।"[11] जमींदार किसानों का केवल शोषण की नहीं करते तो उनकी पिटाई करना, उनको मजदूरी न देना, बेगार लेना नारियों को पीटाई करना, उनकी अस्मत लूटना, फसल लुटाना एवं आगजनी का खेल खेलना आदि कई हथकंडे अपनाकर ग्रामजनों का खून पीते थे। जमींदारों के साथ सभी प्रतिगामी शक्तियाँ रहती थी। कोई विरोध करे, आवाज उठाये तो उसका काम तमाम करने का कार्य भी वे करते थे। इसीकारण विरोध होना तथा विरोध करना कठिण कर्म बना। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रामजीवन शोषित ही रहा। इस समस्या का चित्रण आलोच्च उपन्यास में किस हद तक स्पष्ट सफल हुआ है इसे हम देखेंगे।

रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' (1936) में करनट युवतियों का जमींदारोद्वारा होनेवाला शोषण चित्रित किया है। करनट युवति प्यारी को ठाकुरोद्वारा देखना, उसे बुलाना, पिताद्वारा प्यारी को जाने के लिए स्वीकृति देना, पीटाई का खतरा बताना आदि। तथा भैरवप्रसाद गुप्त के 'सती मैया चौरा' में सुगन्ध राय हर वर्ष को दूने लगान की घोषणा करता है।

II) पुलिसद्वारा शोषण :-

भारतीय राजनीति के नियामक तत्व में सरकार और राजनीतिक दल महत्वपूण्र तत्व है। सरकार अपनी व्यवस्था में पुलिसों की सहायता लेती थी। सुरक्षा शाँति के लिए

पुलिस व्यवस्था बनाई गयी। लेकिन ग्रामीण जन-जीवन में यह एक शोषण का आयाम बन गई। पुलिस रक्षक बनने के अलावा भक्षक बन चुकी थी। पुलिस, दरोगा, गुंडों को अपना पक्षधर बनाना, इमान बेचना, रिश्वते लेना, लगान की वसूली जोर, जबरदस्ती से करना, बस्ती पर जुल्म करना, युवतियों, औरतों, बच्चों की पिटाई करना, युवतियों के वस्त्र उतारना, उन्हें गिरफ्तार करना आदि विविध रूपों में पुलिस शोषण करती थी। पुलिसों की कुटिल नीति के कारण उनमें आतंक के दर्शन होते थे। पुलिसों का जमींदारों के साथ दांत-काटी-रोटी का संबंध होता था। इसीकारण यह शोषण उग्र रूप धारण कर रहा था।

रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' (1956) में नटों का पुलिस दरोगाद्वारा होनेवाला शोषण चित्रित हुआ है। पुलिस दरोगा द्वारा गुंडों को अपना पक्षधर बनाना, दरोगा द्वारा इमान बेचना, रिश्वतें लेना, बस्तीपर जुल्म करना, नटनियों की अस्मत लूटना, औरतों, बूढ़ों, बच्चों की पीटाई करना आदि विविध रूपों में पुलिस नटों का शोषण करती है। तथा भैरवप्रसाद गुप्त के "जंजीरे ओर नया आदमी" में अंग्रेजें की फौज **में दाखिल होने के लिए गाँ**व के जवानों पर जबरदस्ती की जाती है। आज इसमें धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। इसके मूल में भ्रष्टाचार ही प्रधान तत्व है।

III) <u>धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण</u> :-

मानवी जीवन और धर्म का अन्योन्याश्रित संबंध है। "मानव-जीवन और जगत में होनेवाली घटनाओं का संबंध कल्पना की मदद से अति-लौकिक, अति नैसर्गिक शक्ति के साथ जोड़कर इनके प्रति विश्वास, श्रध्दा की भावना रखता है और पूजापाठ, प्रार्थना, यज्ञादि का जाल बना देता है। उसे ही 'धर्म संस्था' के नाम से स्वीकारा जाता है।"[12] धर्म को नैतिक-अनैतिक, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य को स्पष्ट करनेवाली संकल्पना माना गया है। धर्म के कारण देवी देवता के साथ-ही-साथ ब्राह्मण, पंडित, पुरोहित, मुल्ला, मौलवी आदि धार्मिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले धार्मिक व्यक्तियों को भी महत्वपूर्ण स्थान समाज में प्राप्त हुआ है। प्राचीन काल से आज तक धर्म के नाम पर बलि चढ़ाना, दक्षिणा पाना, दान पाना, ग्रह शंति के नाम पर धन

कमाना, अनैतिकता को बढ़ावा देना आदि कई रूपों में धार्मिक व्यक्ति समाज का शोषण कर रहे है। अज्ञानी, अंधविश्वासी ग्रामीण जन–जीवन भी इससे अछूता नहीं रहा। ग्राम जीवन में धर्म का अधिक बोल–बाला था। लोग लुटे रहे थे और कर्ज लेकर लोग धार्मिक विधियों को पूरा करते थे क्योंकि इन लोगों को धार्मिक व्यक्ति भय दिखाते थे, कि अगर धार्मिक कार्य पूरा नहीं किया अथवा दान नही दिया तो नरक प्राप्त होगा आदि कई प्रकार के भय ग्रामीण जन–जीवन में दिखाई देते थे। इसीतरह पवित्र माने जानेवाले धार्मिक व्यक्ति अंदर से लालची, पाखंडी दिखाई देते थे। वे भी समाज का शोषण कर रहे थे। फर्क सिर्फ इतना था कि लोगों को इसका पता भी नहीं चलता था।

रांगेय राघव के 'धरती मेरा घर' और 'पथ का पाप' उपन्यास में भी साधुओं द्वारा लोगों को लुटना इसी का उदाहरण है।

5) <u>नारी शोषण</u> :–

नारी समाज व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। नारी के विविध रूपों की व्याख्या की है मगर आज उसका 'दुर्गा' की अपेक्षा 'अबला' ही रूप अधिक मात्रा में उभर उठा हैं। युगों–युगों से पीड़ित अत्याचार अनाचार की शिकार एवं वासनातृप्ति का साधन बनकर जीवन व्यतीत करने वाली नारी बेबस, लाचार एवं अपमानित जिंदगी जी रही है। बाह्य शक्तियों का आक्रमण, आर्थिकता का अभाव, अशिक्षा, धर्म का बुरा प्रभाव आदि कई कारणों से ग्रामीण नारी का जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में भी नारी हा जीवन अत्यंत पीड़ित और शोषित था। समाज, परिवार, जमींदार, ठाकुर, अफसर, धार्मिक व्यक्ति, रूढ़ि–प्रथा आदि के द्वारा ग्रामीण नारी का शोषण हो रहा था। नारी की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए आशाराणी व्होरा कहती है – "चाहे गामीण अंचल में निवास करनेवाली अनपढ़ गंवार स्त्री हो या चाहे शहर की पढ़ी लिखी, पुरूष प्रधान समाज सब प्रकार से स्त्री को दोषी ठहराता।"[13] भावुक नारी सभी बंधनों का स्वीकार करती है। परिणामतः वही बंधन उसके शोषण के आयाम बन कर नारी जीवन में समस्यायें उत्पन्न करते है। नारी की अस्मत लुटना, पीटाई करना, जेल भेजना, झूठे

आरोप लगाना, गालियाँ देना, भूखी रखना, उनसे जबरन विवाह करना, विरोध करनेवाली नारियों का कत्ल करना आदि कई प्रकार से नारी का शोषण हा रहा है। विधवा नारी की तो इससे बदतर स्थिति थी। उसके सिर का मुंडन करना, उसके द्वारा कमर तोड़कर मेहनत करवाना, अवैध संबंध रखना, अस्मत को लूटना तथा धार्मिक पर्वो एवं संस्कारों के समय उसे समाज के सामने न आने देना, चुडियाँ फोड़ना आदि कई प्रकार से वह शापित जीवन जी रही थी। इसतरह नारी के अबला, भोग्या, लाचार, विवश , कामतृप्ति का साधन, संतानोत्पत्ति का बेजान यंत्र आदि रूपों में दर्शन होते हैं। परिणामतः ऐसे दु:खी, जीवन से मुक्ति के लिए नारी विवश होकर आत्महत्या की ओर बढती है।

आज शिक्षित नारी, चेतित नारी, विद्रोही नारी के रूप भी दिखाई देते है। पढ़ी लिखी नारी अस्मिता की रक्षा कर रही है। नारी संगठन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज नारी स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। नारी की मुक्ति नारी ही कर सकती है ऐसा मुझे लगता है। जब तक वह जाग नहीं उठती तब तक यही स्थिति रहेगी। हिन्दी उपन्यासों में भी नारी समस्या पर यथार्थता से स्पष्ट किया है।

नागार्जुन के 'कुंभीपाक' उपन्यास में ओर प्रेमचंद के 'सेवासदन' में वेश्यावृत्ती का तथा नारी शोषण का रूप दर्शाया है। जो फणिश्वरनाथ 'रेणु' के 'दीर्घतपा' उपन्यास में स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारियों की सहायता करनेवाली नारियाँ पुरूष की वासना, बलात्कार, व्यभिचार की शिकार हुई यह नारी शोषण का उदाहरण है।

6) <u>जातीयता</u> :-

"जाति के मुखिया (पंच) इकठ्ठा होकर जातीय विवादों पर निर्णय देते है, उसी व्यवस्था को 'जातिपंचायत' कहते है।"[14] भारतीय समाज का आधार पुरातन काल से 'जाति संस्था' रही है। अनेक परिवर्तनों के बावजूद भी जातिसंस्था का समाज, देश तथा व्यक्ति के जीवन पर लाभदायक या हानिकारक परिणाम होता है। यज्ञदत्त शर्मा के मतानुसार "हिन्दू धर्म में

जातियों का उदय हुआ, जिसमें जाति–विद्वेष की मात्रा बढ़ी और पारम्परिक घृणा को प्रश्रय मिला। जाति के उत्थान में यह सहायक न होकर बाधक हुई। मानवता एवं सभ्यता का धीरे–धीरे ऱ्हास हुआ।"[15] जाति पाति के कारण मनुष्य–मनुष्य में दीवारे खड़ी हुई। परिणामत: ग्रामीण जीवन खंडित होने लगा। अज्ञान, अंधविश्वास, दरिद्रता और जातीयता का शिकार ग्रामीण जन–जीवन रहा है। ग्रामीण जीवन में विवाह के समय जाति एवं गोत्र को महत्वपूर्ण मानना, विजातीय विवाह को विरोध करना, बिरादरी से बहिष्कृत करना, स्त्रियों ओर क्षुद्रों को हीन मानकर उन्हें वेद–पुराणों का अध्ययन करने में मना करना, स्वजाति का अभिमान होना, छुआछुत का पालन करना, अछुतों का अलग पनघट होना, अछुतों को मंदिर और पाठशाला में प्रवेश न देना अथवा बाहर बिठाना गाँव से अलग, बाहर, दूर जगह देना आदि कई आयामें में जातीयता के दर्शन होते है।

भारत में आज भी ऐसे कई गाँव है, जहाँ जातीयता के आधार पर गाँव की रचना की गई है। उपन्यासों में रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' में ब्रज और राजस्थान के सिमांत प्रदेश के गाँव के करनटों में स्थित जातीय भेदभाव पर प्रकाश डाला है। इस गाँव की रचना व्यवस्था में भेदभाव लक्षित होता है – "गाँव के बाहर चमार बस्ती इसके बाद भंगियों की बस्ती है। चमार भंगियों से नफरत करके अपने आप को श्रेष्ठ मानते है।"[16]

7) <u>भौतिक सुविधाओं का अभाव</u> :–

देश में कई ग्राम विकसित है तो कई, पिछड़े रहे है। जहाँ प्रगति एवं विलास की किरण अभी तक पहुँची नही वहाँ यातायात, बिजली, डाकखाना, अस्पताल, सरकारी विकास योजना एवं सरकारी अधिकारी सहायता आदि का अभाव रहा है। अज्ञानी, अंधविश्वासी, रूढ़ि, परंपरावादी लोग ग्रामीण जीवन का प्रतीक रहे है। जिसके कारण ग्राम और ग्रामवासी आज तक 16 वी शती का जीवन जी रहे है ऐसा लगता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्राम जीवन में नई समस्याएँ लक्षित होती है जो इसप्रकार है –

1) जातीय भेदाभेद की समस्या ।

2) सांप्रदायिकता ।

3) **बेरोजगारी** ।

4) भ्रष्टाचार ।

5) राजनीतिक समस्या ।

6) **नारी शोषण** की समस्या ।

7) नगरों का आकर्षण की समस्या ।

8) खंडित परिवार की समस्या ।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त ग्रामजीवन की समस्याओं पर विचार करनो के पश्चात ऐसा लगता है कि आज तक ग्रामजीवन विभिन्न समस्याओं से घिरा हुआ है। अंधविश्वास, बेकारी, शोषण, जातीयता आदि के मूल मे अज्ञान ही है। समाजसुधारक, प्रगतिवादी प्रचारक, समाजसेवी संस्था, व्यक्ति इस क्षेत्र में अपना-अपना योगदान दे रहे हैं। सरकार भी भरकस प्रयास कर रही है। इसमें धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा है, मगर इसकी गति धीमी है। यह स्पष्ट है कि ग्रामवासियों के सहयोग के बिना न उसकी प्रगति संभव है, न देश की। आज आदर्श ग्राम योजना बनाई गई है। समाजसेवक अण्णा हजारे जैसे व्यक्ति अपना कार्य कर रहे है। इसीकारण ग्रामों का भविष्यकाल अच्छा होगा ऐसा लगता है। समस्यों बनेगी, बढ़ेगी या कम होगी इसकी अपेक्षा कार्य करना, संघर्ष करना, लोगों में चेतना जगाना जागृत करना यही सबसे अच्छा उपाय है। जिसके कारण ग्रामीण जन-जीवन समस्या से मुक्त होगा ऐसा मुझे लगता है।

4) भारतीय संस्कृति - ग्राम संस्कृति :-

भारत यह एक कृषि प्रधान देश है। इसलिए भारतीय संस्कृति मूलतः एक 'कृषि संस्कृति' है। जिसकी पृष्ठभूमि सनातन ग्राम-जीवन है। इस संबंध से ग्राम संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति के रूप में परिभाषित करना असंगत नहीं होगा। परंतु अगर देखा जाए तो ग्रामजीवन आंतरिक और बाह्य दृष्टि से रूढ़ि परम्परा से घिरा हुआ है। यह कहा जाता है कि, भारतीय

संस्कृति का मूल रूप ग्राम संस्कृति में सुरक्षित है।

विश्व में भारतीय संस्कृति को उच्च श्रेणी में रखा गया है, और इस संस्कृति का संबंध ईश्वर, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता और कर्मकाण्ड से जोड़ दिया है। वासुदेव शरण अग्रवाल कहते है – "संस्कृति में कला, धर्म, दर्शन, संस्कार आदि से संबंधित मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है। इसीकारण जीवन के विविध रूपों का समूदा ही 'संस्कृति' कहा जाता है।"[17]
बाबुराव गुप्त ने आदर्शात्मक और सैध्दांतिक प्रक्रिया को संस्कृति कहा है। तो डॉ.पानेरी ने संस्कृति के बारे में लिखा है – "संस्कृति का व्यापक अर्थ किसी समाज की जीवन पध्दति से है; जिसमें उसकी कला, शिल्प, विश्वास, मान्यतायें, मूल्य जीवन दर्शन, संस्कार, प्रथा, धर्म, आदि सब समाहित है।"[18] लेकिन आज का युग वैज्ञानिक, भौतिकवादी है। इसीकारण संस्कृति की ये बातें मानना असंभव सा हो रहा है। व्यक्ति में परिवर्तन अमूल–चूल मात्रा में हो गया है, उसके मूल्य बदल गये है और परिवेश परिवर्तित हो गये है। उसके मानदंड की संस्कृतिमूलक न होकर सभ्यतामूलक हो गये है। यदि संस्कृति का स्त्रोत ग्राम–जीवन है तो सभ्यता का स्त्रोत नगर–जीवन है। विज्ञान के प्रभाव से सारा समाज जीवन परिवर्तित हो रहा है। विज्ञान ने अनेक शोध लगाये है। इसी का परिणाम यह है कि 'वैज्ञानिक युग' का निर्माण हो गया। नगर में इसका अधिक प्रभाव दिखाई दे रहा है। उनकी चपेट में ग्राम टूटते जा रहे है। सांस्कृतिक अवमूल्यन के नये आयाम गाँवों में नागरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्‌घाटित हो रहे हैं। धर्म, दर्शन, विश्वास, साहित्य, संस्कार, तीर्थ–यात्रा, शिक्षा–दीक्षा, मंदिर, विवाह संस्कार, त्यौहार, वर्ण, मूर्ति–पूजा, जीविका, गीत, कृषि, भोजन, शास्त्र, वाद्य, रीति, पोशाक, नृत्य आदि सांस्कृतिक क्षेत्र आधुनिक जीवनक्रम में एक मनोरंजन के साधन मात्र रहे है। उसमें जीवन की किसी भी गंभीर दृष्टिकोण की दृष्टि नहीं है।

नागरी संस्कृति, संस्कृति नहीं रही, बल्कि उसीने विकृत रूप धारण किया है। नागरी संस्कृति ग्राम मे फैल रही है इसलिए ग्राम में भी संस्कृति का मूल रूप दिखाई नहीं देता, किन्तु ऐसे भी कुछ गाँव है, जिनका आधुनिकता से संपर्क नहीं आया है, इन्हें नगर की संस्कृति का पता नहीं है। ऐसे गाँव में मूल रूप में संस्कृति दिखाई देती है। उनकी सांस्कृतिकता अभी शेष है।

संस्कृति फिर ग्रामीण हो या नागरी आज इसकी बहुत आवश्यकता है। मानवीय दृष्टि से, ग्राम–जीवन में लक्षित विशिष्ट सांस्कृतिक रूपों में अनेक जीवन–तत्व, जिनकी जड़े जीवन की गहराई में संरक्षित रहकर आधुनिकता की जीवन पध्दति को चुनौती बन गये है। आधुनिकता का केंद्र अनास्था है, यंत्र और बुध्दि है जो समग्र रूप से नगरजीवन से जुड़े है, ग्राम जीवन के ये अनुकूल नहीं है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि ग्राम–जीवन में पूर्णत: संस्कृति का रूप पूर्णत: साफ निर्दोष है बल्कि इस ग्राम संस्कृति में दोष भी पाये जाते है जैसे रूढ़ि, अंधश्रध्दा, परंपरा आदि। लेकिन यह भी एक ग्रामसंस्कृति का अंग है। इसकी भी एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है तथा लोगों की भावधारा इससे प्रकट होती है, इसलिए सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को देखना अत्यंत आवश्यक है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत धर्म, विवाह, अंधश्रध्दा, रूढ़ि, परंपरा, व्यवसाय, लोकगीत आदि समाविष्ट होते है। उसका विस्तार से विवेचन इसप्रकार किया जा सकता है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :–

1) लोकगीत :–

लोकगीत को 'फोक टॉल' कहा जाता है। गीत, लोकनिर्मित गीत, लोकविषयक गीत है। लोक में प्रचलित गीत ही 'लोकगीत' होते है। लोकगीत किसी भी समय विशेष मात्रा में प्रचलित होते है। कई गीत अस्थायी होते है। कुछ समय के उपरान्त समाज हो जाते है। वास्तव में इसे लोकगीत के अंतर्गत समाविष्ट नहीं किया जाता । 'लोकगीत' वह प्रकार है, जिसको ऐसे किसी व्यक्ति से संबंधित किया जा सकता है, जिसकी मेधा लोकमानस की स्वाभाविक मेधा नहीं। लोकगीतों में लोकवार्ता, भौगोलिक सामग्री का ज्ञान और मनोरंजन की सामग्री भी होती है। लोकगीत स्त्रियाँ गाती है, कुछ सामूहिक रूप में भी होते है। ये लोकगीत छोटे और लंबे होते है। लंबे गीतों में कथा रहती है। धीरेंद्र वर्मा के मतानुसार – "लोकगीतों में अत्यंत महत्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति मिलती है। विदेशो में लोकगीतो का अध्ययन बहुत आगे बढ़ गया है, भारत में अभी संग्रह का काम भी पुरा वैज्ञानिक परिपाटी पर नहीं हो रहा है। वे लोकगीत अनुसंधान का विषय बन गये है।"[19]

ग्राम–जीवन में लोगों की अभिव्यक्ति लोकगीतों से प्रकट होती है, इसे ग्राम जन–जीवन में अनन्य साधारण महत्व है। ये गीत विविध ऋतुओं, विविध संस्कारों के अवसर पर गाये जाते है। यह गीत जाति विशेष द्वारा जातीय गीत के नाम से भी गाये जाते है। गीतों के बारे में रामनरेश त्रिपाठी का कथन है – "देश का सच्चा इतिहास और उनका नैतिक और सामाजिक आदर्श न गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।"[20] भारतीय संस्कृति की रीढ़ ग्रामीण एव आदिम संस्कृति रही है। लोकभाषा के माध्यम से स्वर और लय के साथ, संगीत के आवरण में लिपटी हुई सामान्य लोगों की रागात्मक अनुभूतियों को 'लोकगीत' कहा जाता है। विद्या चौहान के शब्दों में – "मानव भावनाओं को कोमल सहज एवं रसात्मक अभिव्यक्ति का जो प्रभावशाली प्रमाण लोकगीतों में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।"[21] लोकगीतों में अनेक प्रकार पाये जाते है, जैसे, विवाह के गीत, बिदाई के गीत, शोक के गीत, लोरियाँ, देवता के पूजा गीत, संक्रांती, होली, दीपावली के गीत, प्रभात समय के गीत, नृत्यगीत, यात्रा के गीत शिकार के गीत आदि। ये लोकगीत ग्राम संस्कृति के धरोहर लगते हैं।

आज शहरी सभ्यता का आक्रमण, ग्रामीण जन–जीवन की रहन–सहन, बोली, रीति–रिवाज आदि पर ही नहीं बल्कि लोकसंगीत और लोकगीत पर भी हावी हो रहा है। फिल्मी गीतों के दुष्प्रभाव के कारण लोकगीतों की सहज, सरल धून टुटती जा रही है। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में इस लोकगीत की महत्ता अधिक दिखाई देती है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'परती–परिकथा' उपन्यास में परती धरती की एक परिकथा कोशी मैया की कथा है, जिसे लोकगीत तथा गद्य में भैंसवार सुनाता है। तथा रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में औरतें हल चलाते हुए गीत गाती हैं, इसमें विरह गीत भी हैं।

।।) <u>धर्म</u> :–

भारतीय समाज में धर्म का अन्यन्य महत्व है। व्यक्ति जब जन्म लेता है, तभी उसका धर्म निश्चित होता है फिर वह मुस्लिम हो, ख्रिस्त, ईसाई, हिन्दु कोई भी हो। धर्म का अभिमान हर व्यक्ति को होता है। सांप्रदायिक संघर्ष, दंगा, फसाद का कारण भी यही

धर्म बना है। भारतीय संस्कृति का आधार धर्म एवं धर्मशास्त्र है। "समाज की संचलन करने के लिए जिन शास्त्रों का निर्माण हुआ उनमें से एक धर्मशास्त्र है।"[22] भारतीय संस्कृति का धर्ममूलक होना और धर्म का साधुता के साथ अन्योन्याश्रित संबंध होना ही वह सूत्र है, जिसमें लोकमानसं का श्रध्दाभाव आबध्द है। किन्तु यह श्रध्दाभाव प्राय: अंधश्रध्दाभाव है। वैज्ञानिक युग, उसकी उपलब्धियाँ और नवचिन्तन के अनुरूप धर्माश्रित भारतीय संस्कृति को नया रूप देने का प्रयास किया गया है।

पिछडा हुआ ग्रामीण समाज धार्मिक पाखंडों में विश्वास करता है। धर्म का जो स्वरूप है, वह सबल और समृध्द लोगों के लिए वरदान स्वरूप, यशकीर्ति एवं उनके अस्तित्व को बनाए रखने में सहयोगी सिध्द होता है। निर्बल, अक्षम और हीन लोग ऐसे धर्म के कठोर अनुशासन में पिस–पिसकर सदा अन्याय और अत्याचार का शिकार होते हुए अपनी असहाय स्थिति में ही पड़े रहने के लिए विवश होते है। इसी धर्म को मार्क्स ने अफीम कहा था। लेनिन के अनुसार – "धर्म उन नियमों की नींव डालता है, जिसके द्वारा समाज का एक बृहतांश दूसरे के लिए कार्य करने को बाध्य किया जा रहा है।"[23] प्राय: इसी धर्म के कारण दंगा, फसाद और सांप्रदायिक संघर्ष का जन्म होता है। उपन्यासों में यहीं संघर्ष अनेक जगह प्रस्तुत किया गया है।

राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' उपन्यास में और भैरव प्रसाद गुप्त के 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में सांप्रदायिकता की समस्या मुख्य रूप में उभरी है।

III) विवाह :–

विवाह जीवन का प्रवेशद्वार होने के कारण भारतीय संस्कृति में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। सोलह संस्कारों में यह एक पवित्र संस्कार है। विवाह से पारिवारिक जीवन समृध्द होता है। अनेक विद्वानों ने 'विवाह' की परिभाषा करने का प्रयास किया है। यज्ञदत्त शर्मा के मतानुसार "विवाह एक सामाजिक बंधन है, जो मानव–जीवन को व्यवस्थित और सुचारू रूप से चलाने के लिए समाजने बनाया है।"[24] तो हिन्दी शब्द सागर में "स्त्री पुरूष को दांपत्य सूत्र में बांधनेवाली रीति को विवाह कहा गया है।"[25] कोशगार ने आगे लिखा है कि यह पध्दति

हिंदूओं में संस्कार के रूप में मानी जाती है। भारतीय ग्रामीण समाज वैवाहिक संदर्भ में क्रय–विक्रय जैसी भ्रष्ट रूढ़िवादिता की हास्यास्पाद तलहटियों में संकुचित हुआ चला जा रहा है।

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक सामाजिक समस्या है। गाँव में तो इसके दुष्परिणाम ही दिखाई देते है। अनमेल विवाह से नारी को एक तो विधवा होना पड़ता है या किसी दूसरे नवयुवक के साथ भाग जाना पडता है। गाँव में विवाह का स्वस्थरूप दुर्लभ है, जो व्यक्ति के जीवन को सुख–संतोष और विकास प्रदान करें। रूढ़ि, परंपरा, सामाजिक मान्यता, पारिवारिक बंधन में विवाह संस्कार जकड़ा है। विधवा–विवाह तो ग्रामीण समाज में न होने से विधवा की स्थिति दयनीय बनी है। परंपरा से बँधे हुए ये लोग समाज–जीवन का एक अंग है। अतः भारतीय समाज में विवाह का सामाजिक ही नहीं धार्मिक महत्व भी है, तथा इसे एक संस्कार की संज्ञा भी दी गयी है। लेकिन समय के साथ समाज में वैवाहिक संबंधों का स्वरूप विकृत होता गया है। हिन्दी उपन्यास में विधवा विवाह तथा अनमेल विवाह समस्या को ग्रामीण जन–जीवन के धरातल पर स्पष्ट किया है और उसके दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची', 'नयी पौंध', 'पारो' और 'उग्रतारा', 'दुःखमोचन' उपन्यासों में अनमेल विवाह की समस्या के सामाजिक, आर्थिक कारणों पर प्रकाश डाला है।

IV ) अंधविश्वास :–

भारतीय ग्राम जीवन रूढ़ियों और परंपराओं में जकडा है। गाँव को अंधविश्वास से काटकर यदि पृथक कर दिया जाय तो वह गाँव नहीं रह जाता है। "गाँव का अर्थ है विश्वास और शताब्दियों का यह विश्वास अंधकारविष्ट रहा। अतः "अंधविश्वास" होकर उसके साथ इस तरह जुड़ गया है कि अनिवार्य अंग हो गया है।"[26]

अंधविश्वास का यह चित्र केवल ग्रामीण समाज में ही दिखाई देता है ऐसा नहीं तो पूरे भारतीय समाज में इसका कम–अधिक प्रभाव दिखाई देता है। आज विज्ञान ने बहुत तरक्की की है, लेकिन अंधविश्वास समूल नष्ट नहीं हो सका। पढ़े–लिखे लोग भी इसी अंधविश्वास के

शिकार हो जाते है। फर्क सिर्फ इतना है कि नगर के लोग इसपर कम विश्वास रखते है। परन्तु ग्रामीण समाज इसे अधिक महत्व है। देवताओं के सामने बलि चढ़ाना, बिल्ली द्वारा रास्ता काटना, मनौतियाँ माँगना, व्रत–उपन्यास रखकर देवताओं को प्रसन्न करना आदि अंधविश्वास में शामिल होते है। लेकिन इसे एक संस्कृति–संस्कार माना जाता है। श्रध्दा का भाव अंधश्रध्दा में बदल जाता है फिर वह रूढ़ि, परंपरा का रूप धारण करके संस्कृति में समाविष्ट होता है।

इसके पहले भी अंधविश्वासपर विचार किया है। पुनरावृत्ती को टालने के लिए उल्लेख किया है।

5) लोकरीतियाँ रूढ़ियाँ – परंपराएँ :–

भारतीय ग्रामीण समाज में लोकरीति और रूढ़ि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। ग्राम विशेषता के अंतर्गत इसका समावेश होता है। विलियम ग्राहम समनर का मत है – "लोकरीतियाँ प्राकृतिक शक्तियों की उत्पत्ति सदृश होती है, जिन्हें मनुष्य अचेतनावस्था में प्रारंभ करते है, अथवा वे पशुओं की नैसर्गिक अवस्थाओं सदृश होती है। जो अनुभव से विकसित होती है, जो किसी स्वार्थ के लिए अधिकतम अनुकूलन के अंतिम स्वरूप तक पहुँचती है, जो परंपरा से चली आती हैं और किसी भी अपवाद या भिन्नता को स्वीकार नहीं करती तथापि नई परिस्थितियों का अनुकूलन करने के लिए बदलती है परंतु तब भी उन्हीं सीमित पध्दतियों के अंदर ही परिवर्तित होती हैं और विवेकपूर्ण मनन या उद्देश्य से रहित होती है।"[27]

रूढि :–

लोकरीतियों से ही रूढ़ियों का निर्माण होता है। जब कोई लोकरीति बहुत अधिक व्यवहार में आने के कारण आवश्यक समझ ली जाती है तो वह रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है। मोतीलाल गुप्तजी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय सामाजिक संस्थाएँ' में रूढ़ि के बारे में कहा है – "आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति कुछ साधनों एवं आदतों को अपनाता है , वह आदत समाजद्वारा स्वीकृत होनेपर जनरीति बनती है। जनरीति के साथ भूतकालीन अनुभव हो तो

जनरीति प्रथा बनती हैं। इसमें सामूहिक कल्याण की भावना हो तो वह रूढ़ि का रूप लेती है।

रूढ़ि–रीतियों एवं जातिगत ऊँच नीच के भेद–भाव से ग्रासित हमारे समाज की प्रगति का मार्ग अभी तक अवरूध्द है क्योंकि हमारी कथनी और करनी तथा आदर्श और व्यवहार में अंतर है। धार्मिक रूढ़ि के बारें में डॉ.यादव कहते है – "सामाजिक रूढ़ियाँ तो एक हद तक सभ्यता की उन्नति के साथ–साथ लुप्त हो जाती है लेकिन धार्मिक रूढ़ियाँ बहुत दिन तक रहती है। क्योंकि धार्मिकता के संस्कार मानव जीवन में अपेक्षाकृत अधिक गहरे और श्रध्दाभारित होते हैं।"[28]

मानव के प्रत्येक क्रिया कर्म के साथ रूढ़ियों का सिलसिला चलता आ रहा है। समाज से मान्यता प्राप्त करने की विधियाँ ही समाज की प्रथाएँ बनती है। प्रथा में जब सामूहिक कल्याण, उपयोगिता की भावना रहती है तब प्रथा को रूढ़ि का रूप प्राप्त होता है। रूढ़ि के साथ धार्मिक अंधविश्वास जुड़ा रहता है। समाज में बहुत सी रूढ़ियों का पालन धार्मिक अंधविश्वासों ओर सामाजिक दबावों के कारण किया जाता हैं। अत: रूढ़ियों के प्रति अनास्था या अविश्वास प्रकट करना धार्मिक विश्वासों को धक्का पहुँचाना हैं। भारत में अनेक रूढ़ियों का प्रचलन है। धर्म, पंथ, जाति, काल तथा अंचल के अनुसार इसमें परिवर्तन दिखाई देता है। जब परंपरा अपरिवर्तित नियम बनती है तब वह समाज के लिए शोषक बनती है। रूढ़ि, प्रथा, परंपरा का पालन सोच समझकर नहीं होता बल्कि हस्तांतरण के रूप में होता है। इस बारें में वर्मा लिखते है – "प्रथायें तथा परंपरायें समूह द्वारा स्वीकृत नियंत्रण की वे पध्दतियाँ है, जो व्यवस्थित हो जाती है; जिन्हें बिना सोचे विचारे मान्यता दें दी जाती है और जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।"[29] किसी समाज विशेष की संस्कृति का उनके समाज जीवन का, उनके जीवन के दृष्टिकोन का अध्ययन उस समाज में प्रचलित रूढ़ियों एवं परंपराओं के आधारपर किया जा सकता है। भविष्य देखना, तीर्थयात्रा करना, दान देना, जैसी रूढ़ियाँ शोषण की प्रतीक हैं। आज भी लोग आर्थिक पिछड़ेपन व गरीबी से ग्रस्त होते हुए भी पुरानी

परंपराओं एवं मान्यताओं की पूर्ति के लिए या भविष्य में स्वर्ग में स्थान सुनिश्चित करने के लिए कर्ज लेकर भी मृत्यु–भोज देना, दान देना, दहेज देना और तीर्थयात्रायें कर अपने आपको गरीबी और गुलामी में ढकेलते जा रहे है। इसके दर्शन ग्रामांचल में होते है।

भारतीय ग्राम–समाज अपनी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में रूढ़ि–प्रथा–परंपरा का निर्वाह कर रहा है। प्राचीन प्रथा, परंपरा में आज थोड़ा परिवर्तन हो रहा है, लेकिन अधिक से अधिक मान्यताएँ स्थिर है, जिसका संबंध भावनीक रहा है। कभी–कभी सामाजिक स्वास्थ की दृष्टि से उसका महत्व भी रहा है। लेकिन सच्चाई यह है मानवहित में जो प्रथा है, उसका पालन होना चाहिए। आज का पढ़ा–लिखा व्यक्ति रूढ़ि प्रथा को ठुकराता है, ऐसा दिखाई देता है।

6) <u>व्यवसाय एवं आर्थिक स्थिति</u> :–

किसी भी समाज की संपन्नता उसकी आर्थिकता पर निर्भर है। भारतीय जनता की आर्थिकता का प्रमुख स्त्रोत खेती है, जिसका आधार भूमि है। जातिगत और परंपरागत व्यवसाय करना ग्रामीण जीवन की विशेषता रही है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में ग्राम–जीवन आर्थिक दृष्टि से स्वयंपूर्ण था। स्वातंत्र्योत्तर काल में इसमें बदलाव आ गया। आज कोई भी अपना कहीं भी व्यवसाय शुरू कर सकता है। इसकारण आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो गया है। लेकिन इसे 100 प्रतिशत सच मानना गलत होगा क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर काल में जो बदलाव आया वह कुछ ग्रामों तक सीमित रहा। आज कई ऐसे गाँव है, जिन्हें अपना परंपरागत व्यवसाय ही अच्छा लगता है। फिर चाहे खेती करना हो या गाय, भैंस, बकरी पालना, बर्तन बनाना, मजदूरी करना आदि कई ऐसे व्यवसाय है, जिसमें अभी तक बदलाव नहीं आया है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में भी बदलाव नहीं आया। समाज व्यवस्था में अर्थव्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण होने पर भी ग्राम–जीवन का अज्ञान, अंधविश्वास, प्रथा–रूढि, पंरपरा, शिक्षा का अभाव आदि कारणों से ग्राम अर्थव्यवस्था पूर्णतः विकसित नहीं हो रही है।

7) <u>अवैध धंदे</u> :-

आर्थिकता के आय-व्यय पर समाज-जीवन का स्तर निर्भर रहता है। ग्राम के लोग अपनी उपजीविका चलाने के लिए, उदरपूर्ति के लिए परंपरागत व्यवसाय करते है। लेकिन केवल परंपरागत व्यवसाय पर अपनी उपजीविका चलाना मुश्किल होता है तब अपनी आर्थिक दुर्बलता को नष्ट करने के लिए लोग अवैध धंदों की तरफ बढ़ते हैं। उसमें चोरी करना, डाका डालना, शराब बेचना, गांजा, अफीम, चरस बेचना आदि भी धंदे करते है। अज्ञान, शिक्षा का अभाव, औद्योगिकरण का अभाव आदि इसके कई कारण लगते है। स्वतंत्रता को 50 वर्ष हो गये लेकिन इसका जीवनमान अभी तक वही-का-वही है और पेट की आग बुझाने के लिए लोग कुछ भी करने को तैयार हो जाते है। फिर वह धंदा वैध या अवैध इसका विचार करना उनके लिए गौण बन जाती है। कई बार ऐसा होता है कि ये लोग प्रत्यक्ष रूप से तो यह अवैध धंदे करते हुए दिखाई देते है लेकिन इनके भी पीछें जमींदार, महाजन आदि कई बड़े लोगों का हाथ दिखाई देता है। पकडे जाने पर कई बेकसूर आदमियों को जेल जाना पडता है। इन सारी समस्याओं का मूल कारण है कि उनकी आर्थिक दुर्बलता।

आज गाँव-गाँव में पाठशालायें खोली गई है। शिक्षा का प्रसार धीरे-धीरे हो रहा है। लोगों को भला-बुरा समझ में आने लगता है फिर भी इन अवैध धंदो पर पूरी तरह रोक लगाना मुश्किल ही नहीं नामुमकनी दिखाई देता है।

<u>निष्कर्ष</u> :-

भारतीय संस्कृति की रीढ़ मुख्यतया ग्रामीण संस्कृति है। ग्रामीण क्षेत्र में स्थित औद्योगिकरण, यांत्रिकीकरण, सरकार की सुधार योजनायें, विभिन्न धर्मो एवं संस्कृति का उनपर होनेवाला आक्रमण आदि से संस्कृति में दरारें उत्पन्न हो रही हैं। अतः ग्रामीण संस्कृति को बचाने की आवश्यकता है क्योंकि आजकल संस्कृति-विकृति हो रही है। अगर ग्राम संस्कृति नष्ट हो गयी तो भारतीय संस्कृति भी नष्ट होगी। शहरों की ओर बढ़ना, नागरीकरण, शहरी सभ्यता का आकर्षण, नौकरी के लिए ग्रामीण युवकों का नगरोन्मुखी होना, याता-यात की सुविधा, आदि कई कारण है; जिसके कारण ग्राम-संस्कृति में परिवर्तन लक्षित हो रहा है। हिन्दी के उपन्यासों

में इसके दर्शन होते है। अलग–अलग, वैतरणी इसका अच्छा उदाहरण है। अपनी प्राचीन संस्कृति सुरक्षित रखकर ग्रामों का विकास होना चाहिए ऐसा मुझे लगता है।

5) स्वातंत्र्योत्तर ग्राम–जीवन :–

स्वातंत्र्योत्तर शब्द का अर्थ "वह कालावधि जो 15 अगस्त 1947 ई. के पश्चात अभिमुक्त है और जिसमें आधुनिक मुक्त जीवन की समस्त संभावनायें और देशगत बहुविध विकसनशील वृत्तियों के प्रसार की कल्पनायें है।"[30]

भारतीय जन–जीवन की सारी आकांक्षायें स्वातंत्र्योत्तर काल पर लगी हुई थी। ग्रामसुधार और समाज सुधार की चर्चायें होने लगी थी। आजादी के पश्चात् लोकतंत्र की स्थापना करना, समाजवादी व्यवस्था लाना, खेती सुधार, ग्राम सुधार योजना, सामुदायिक विकास योजना आदि लक्ष्य रहा। इस लक्ष्यपूर्ति के लिए पंचवार्षिक योजनाएँ बनाई गई। सन् 1928 में रूस और 1956 में चायना में सफलता के साथ पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा आर्थिक नियोजन करके राष्ट्रीय विकास का लक्ष्य प्राप्त किया। भारत देश ने भी इसका स्वीकार किया। खेती विकास ओर ग्रामोद्योग से ही राष्ट्रविकास संभव है। यह बात ध्यान में रखकर नियोजन होने लगा। गांधीवादी योजना, बंबई योजना, जन योजना जैसी योजना प्रचलित थी। अंत में 1951 में संविधान में उल्लेखित प्रथम पंचवर्षी योजना का आरंभ हुआ। लेकिन उस समय देश में अनेक समस्याएँ मौजुद थी। आर्थिक असंतुलन युध्द प्रभाव, विभाज, महँगाई, अकाल, मुद्रास्फीति, भ्रष्टाचार, कृषि उद्योग की उपेक्षा, नौकरशाही सभ्यता – संरक्षण परावलंबन, विलासिता – प्रोत्साहन आदि समस्याओं को दूर करने के लिए आठ पंचवर्षीय योजनाएँ बना गर्ठ जिससे ग्रांम जीवन में विकास की धारा बहने लगी।

निष्कर्ष :–

मनुष्य समाजशील प्राणी है। अत: समाज–जीवन में रहना उसकी विशेषता रही है। समाज–जीवन का साहित्य एक अभिन्न अंग है। अत: साहित्य समाज जीवन का दर्पण बन गया है। समाज–जीवन की महत्वपूर्ण ईकाई "ग्राम" है। ग्रामों को मिलाकर भारत देश तैयार हुआ।

अतः ग्राम किसे कहा जाता है ? उसकी परिभाषा, विशेषताएँ, ग्राम की व्यवस्था, ग्राम का प्राचीन रूप, ग्रामजनों की स्थिति, ग्राम जीवन की समस्यों आदि के बारे में प्रस्तुत अध्याय में प्रकाश डाला गया है। "ग्राम" हम उसे कहते हैं जहाँ किसान, खेतिहर लोग रहते है। छोटी बस्ती को 'ग्राम' कहा जाता है। जहाँ धार्मिक, सामाजिक एकता के दर्शन होते है, जहाँ अपनी पुरानी परंपरा, संस्कृति की रक्षा होती है उसे "ग्राम" कहना चाहिए। इस बात पर भी यहाँ सोचा गया है। प्राचीन संस्कृति अपने देश की मूल संस्कृति है, धरोहर है। आज नागरीकरण, नगरों की चका-चौंध, आकर्षण, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आदि के कारण ग्रामीण संस्कृत में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। यह एक नई समस्या के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है कि यही प्राचीन सभ्यता आज धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही है। उसी तरह ग्राम संस्कृति और भारतीय संस्कृति की महत्ता तथा वास्तव रूप में ग्राम संस्कृति ही भारतीय संस्कृति की रीढ़ है। अगर ग्राम-संस्कृति का नाश होगा तो भारतीय संस्कृतिक नहीं बच सकती, यह यहाँ स्पष्ट किया है। स्वातंत्र्यपूर्व ग्रामीण जन-जीवन अत्यंत पिसा हुआ, हीन प्रतीत होता है, उसी काल में क्रांति का जन्म हुआ। भारत 1947 को स्वतंत्र हो गया। स्वतंत्रता के साथ भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजना, विविध कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामजीवन में विकास की धारा प्रवाहित की है। खेती का विकास, औद्योगिकरण, याता-यात की सुविधा, शिक्षा, कर्ज व्यवस्था, स्वास्थ्य पर भी बल दिया जा रहा है। स्वतंत्रता के बाद कृषि और अधिक ध्यान दिया गया। पंचवर्षीय योजनायें, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के द्‌वारा ग्राम जीवन का विकास हो गया, लेकिन उसी के साथ-साथ बेकारी, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, जातीयवाद जैसी नई समस्यायें निर्माण हो गई। एक ओर सरकार ग्राम जीवन को सुधारने की पूरी कोशिश कर रही है तो दूसरी ओर भ्रष्टाचार के कारण यह फायदा गाँव तक ही पहुँच ही नही रहा है। फिर भी कई गाँवों में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। गाँव का विकास हुआ है, याता-यात के साधन, भौतिक सुविधाएँ आ गयी है। लेकिन कुछ हद तक ही, क्योंकि स्वतंत्र भारत में ऐसे भी कई ग्राम है, जो अभी तक पिछड़े दिखाई देते है। वे अंधविश्वास रूढ़ि-परंपरा के जकड़े हुये है। सरकार की योजनाओं का फायदा कुछ सिमित गाँवों के लिए ही मिला है। अतः परिवर्तित ग्राम-जीवन विकसित तो हुआ है

लेकिन साथ–ही–साथ कई समस्याओं से घिरा हुआ भी दिखाई देता है, ऐसा मुझे लगता है।

स्वातंत्र्यपूर्व की ग्राम व्यवस्था की अपेक्षा आधुनिक काल की व्यवस्था में परिवर्तन हो रहा है। पंचायतराज, न्यायप्रणाली, पुलिस व्यवस्था का प्रभाव आज दिखाई दे रहा है। राजनीति के विविध आयाम या पैंतरे लक्षित हो रहे है। विविध समस्याओं में अटका ग्राम–जीवन अपनी परंपरा, रूढ़ी, मान्यता, अंधविश्वास में जकडा ग्रामवासी, प्रकृति के साथ जीविका चलानेवाला, स्वच्छंदी मानव, आज विकास की ओर बढ़ रहा है।

यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि सरकारी प्रयास, समाज सुधारक और समाजसेवी संस्था तथा व्यक्तियों के प्रयास से ग्राम जीवन चेतित हो रहा है। मगर भ्रष्ट राजनीति, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, सांप्रदायिकता भी हावी हो रही है। उससे भोले–भाले, अज्ञानी अंधश्रध्द ग्रामवासीयों की रक्षा करनी चाहिए। यदि यह नहीं होगा तो देश की नींव, बुनियाद, संस्कृति खतरे में पड़ेगी यही चेतावनी यहाँ दी है।

अतः हम कह सकते है कि आज ग्राम–जीवन विविध समस्याओं से जुझता हुआ, प्रगति की ओर बढ रहा है। विकास की गंगा, नई रोशनी से ग्रामजीवन समृध्दी की ओर बढ़ रहा है ऐसा लगता है।

## संदर्भ


1. सांचद वासु लेटे – पाणिनी अष्ठाध्यायी, अध्याय पाँचवा, प्रकरण – 2, पद – 10, पृ. 896
2. संपादक – श्याय सुंदरदास – हिन्दी शब्द सागर, भाग – तीन, पृ.1370
3. प्र. न. जोशी – आदर्श मराठी शब्दकोश, पृ. 240
4. डॉ.ज्ञान अस्थाना – हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्यायें, पृ. 33
5. संपादक अध्यक्ष – आमदार पी. बी. साळुंखे – महात्मा फुले गौरव ग्रंथ, पृ.9
6. डॉ.विरेंद्र सिन्ह – शब्दार्थी के गवाक्ष, पृ. 57
7. डॉ.सुरेंद्रप्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 158
8. प्रा.सौ.शरयू अनंतरामा – सामाजिक संस्था, पृ. 243
9. विवेकी राय – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामीण जीवन, पृ.179
10. डॉ.बलवंत साधु जाधव – प्रेमचंद्र साहित्य में दलित चेतना, पृ. 183
11. एन. रवीद्रंनाथ – मार्क्सवाद ओर हिन्दी उपन्यास, पृ. 134
12. प्रा.सौ.शरयू अनंतराम – सामाजिक संस्था, पृ. 242
13. आशाराणी व्होरा – भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 5
14. त्रिंबक नारायण अत्रे – गावगाडा, पृ. 28
15. यज्ञदत्त शर्मा – प्रबंध सागर, पृ. 153
16. रांगेय राघव – कब तक पुकारूँ, पृ. 150
17. वासुदेश शरण अग्रवाल – कला ओर संस्कृति, पृ. 1
18. डॉ.जयश्री बरहाटे – हिन्दी उपन्यास : सातवाँ दशक, पृ. 34
19. धीरेंद्र वर्मा – हिन्दी साहित्य कोश – भाग 1, पृ. 750
20. डॉ.विद्या चौहान – लोकसाहित्य, पृ. 72
21. वही, भूमिका से।

22. संपा. य. दि. फडके – केतकर लेख संग्रह, पृ. 162

23. डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 67

24. यज्ञदत्त शर्मा – प्रबंध सागर, पृ. 153

25. संपा. श्यामसुंदर दास – हिन्दी शब्दसागर (नवां भाग) पृ. 4536

26. विवेकी राय – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, पृ. 271

27. विलियम ग्रहम समनर – फोखेज, बोस्टन, पृ. 13

28. डॉ. सुरेंद्र प्रताप यादव – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, पृ. 66

29. वृंदावन लाल शर्मा – मृगनयनी, पृ. 200

30. विवेक राय – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्रामजीवन, पृ. 17